



# शोधामृत

(कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की अंतर्राष्ट्रीय सहकर्म समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका)

ISSN : 3048-9296 (Online)

3049-2890 (Print)

IIFS Impact Factor-5.375

Vol.-3; issue-3 (July-Sept.) 2026

Page No- 60-67

DOI- 10.71037/Shodhaamrit.v3i3.10

©2026 Shodhaamrit

<https://shodhaamrit.gyanvividha.com>

Author's :

## 1. मीना कुमारी

शोधार्थी, योग विभाग, केंद्रीय  
विश्वविद्यालय, महेंद्रगढ़, हरियाणा.

## 2. डॉ. नवीन

सहायक आचार्य, योग विभाग, केंद्रीय  
विश्वविद्यालय, महेंद्रगढ़, हरियाणा.

Corresponding Author :

## मीना कुमारी

शोधार्थी, योग विभाग, केंद्रीय  
विश्वविद्यालय, महेंद्रगढ़, हरियाणा.

## योग साधना में आहार की भूमिका : पथ्य, अपथ्य और मिताहार का विश्लेषण

**शोध-सार :** जीवन की तीन मूलभूत आवश्यकताओं (रोटी कपड़ा व मकान) में रोटी/आहार सर्वप्रथम है जिसके आधार पर शरीर की शरीर को ऊर्जा मिलती है एवं जीवन की मुख्य व स्वाभाविक क्रियाएं समपन्न होती हैं। यौगिक ग्रंथों में आहार को विशेष महत्त्व दिया गया है क्योंकि यह न केवल शरीर के पोषण के लिए आवश्यक है बल्कि मानसिक शांति व स्थिरता के साथ आध्यात्मिक उन्नति में भी सहायक होता है। यह शोध पत्र यौगिक ग्रंथों में वर्णित आहार की महत्ता एवं उसके वर्गीकरण का विश्लेषण करता है। योग जिज्ञासुओं के लिए 'हितभूक्, ऋतभूक्, मितभूक्' होना आवश्यक है क्योंकि इसी नियम से आहार ग्रहण करने से योग साधना सिद्ध हो सिद्धि की प्राप्ति होती है। यह अध्ययन प्राचीन ग्रंथों जैसे- भगवद्गीता, हठप्रदीपिका, घेरण्ड संहिता, गोरख-बानी आदि के आधार पर किया गया है।

**कुट-शब्द :** भारतीय ज्ञान प्रणाली, यौगिक ग्रंथ, मिताहार, पथ्य-अपथ्य आहार, योग साधना।

**भूमिका :** योग भारतीय संस्कृति और आध्यात्मिक परंपरा का एक महत्वपूर्ण अंग है। यौगिक आहार केवल एक भोज्य पदार्थ नहीं है, बल्कि यह शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक शरीर में संतुलन बनाए रखने का एक माध्यम है। यौगिक ग्रंथों में आहार का विशेष महत्त्व बताया गया है, क्योंकि शुद्ध आहार से मन और शरीर शुद्ध व स्वस्थ होते हैं। शुद्ध, स्वस्थ मन व शरीर से किये जाने वाले कार्य योग साधना में सिद्धि प्राप्त करने में सहायक हैं। अतः शुद्ध व उचित आहार योगियों के लिए अत्यंत आवश्यक है क्योंकि यह शरीर का प्रथम उपस्तंभ है जो योग सिद्धि में सहायक है। इस शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य यौगिक ग्रंथों में उल्लेखित आहार की महत्ता, उसके वर्गीकरण एवं योग साधना में आहार के प्रभाव को विस्तृत रूप से समझाना है।

**शोध की आवश्यकता :** आधुनिक युग में अस्वास्थ्यकर भोजन की प्रवृत्ति बढ़ रही है, जिससे न केवल शारीरिक बीमारियाँ बढ़ रही हैं, बल्कि मानसिक असंतुलन की वजह से अशांति व अस्थिरता भी देखी जा रही है। योग शास्त्रों में आहार को मन की शुद्धता एवं शारीरिक

स्वास्थ्य के लिए महत्वपूर्ण बताया गया है। इसलिए इस शोध के माध्यम से प्राचीन यौगिक ग्रंथों के आधार पर आहार एवं इसके (आहार) ग्रहण करने से सम्बंधित नियमों का पालन करने पर मानव जीवन व योग साधना में इसके महत्त्व को दर्शाया गया है।

**शोध की पद्धति :** यह शोध प्राचीन यौगिक ग्रंथों के अध्ययन और उनके तुलनात्मक विश्लेषण पर आधारित है। इस शोध में गुणात्मक शोध विधि अपनाई गई है, जिसमें प्राचीन ग्रंथों से संदर्भ एकत्र कर उनका विश्लेषण किया गया है। अध्ययन के लिए विभिन्न यौगिक ग्रंथों का उपयोग किया गया है उदाहरणस्वरूप- भगवद्गीता, हठप्रदीपिका, घेरण्ड संहिता, शिव संहिता, आयुर्वेदिक ग्रंथ (चरक संहिता, सुश्रुत संहिता), आदि।

**भारतीय ज्ञान प्रणाली के अनुसार आहार ग्रहण करने के नियम :**

मिताहार- योगशास्त्रों के अनुसार मिताहार योग सिद्धि में सहायक है

**सुस्निग्धराहारश्चतुर्थाशविवर्जितः।**

**भुज्यते शिवसमंप्रीत्यै मिताहारः स उच्यते॥ (हठ ५० १/५७)**

हठप्रदीपिकानुसार मिताहार को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि सुस्निग्ध तथा मधुर आहार, भगवान को अर्पित कर, अपने पूर्ण आहार का चतुर्थांश कम खाया जाए, तब उस आहार को मिताहार कहते हैं। यह आहार योगियों के लिए सर्वश्रेष्ठ बताया गया है।

**मिताहारी के लक्षण-**

**सुस्निग्धो मधुराहारी चतुर्थाशविवर्जितः।**

**मुञ्चते स्वरसं प्रीत्यै मिताहारी स उच्यते॥ (गो० ५० १/५४)**

गोरक्षपद्धति के अनुसार मिताहारी के लक्षणों का वर्णन इस प्रकार किया गया है- जो स्निग्ध (चिकना) व मीठा भोजन करता है एवं जो भोजन करते हुए दो भाग अन्न और एक भाग जल तथा उदर का चतुर्थ अंश रिक्त रखे, क्षार व अम्ल का त्याग करे वह मिताहारी कहलाता है।

**भोजन के लिये उपयुक्त समय-**

**अनिलेआर्क प्रवेशे च भोक्तव्यं योगिभिः सदा।**

**वायौ प्रविष्टे शशिनि शयनं साधकोत्तमैः॥ (शिव० स० ३/४३)**

प्राचीन यौगिक ग्रंथ शिव संहिता के अनुसार भोजन से पूर्व मनुष्य को नाड़ी संचालन पर अवश्य ध्यान देना चाहिए क्योंकि शिव संहिता में कहा गया है कि योगी को सदा भोजन सूर्य नाड़ी के चलने पर करना चाहिए एवं चंद्र नाड़ी के चलने पर सो जाना चाहिए अर्थात् भोजन नहीं करना चाहिए।

**सूरजे षायबा चंद्र सोयबा उभै न पीबा पांणी ।**

**जीवता कै तलि मूवा बिछायबा यूं बोल्हो गोरष बांणी॥ (गो० बा० १/११५)**

गोरखबानी के अंतर्गत सबदी में भोजन के लिए नियम का वर्णन करते हुए कहा गया है कि जब सूर्य स्वर / नाड़ी के चलने पर भोजन करना चाहिए और चंद्र नाड़ी के चलने पर सोना चाहिए, किंतु पानी दोनों में नहीं पीना चाहिए। इस जडरूपी अर्थात् स्थूल शरीर का उपयोग आत्मा के लाभ के लिए होना चाहिए, गोरख ऐसी बानी बोलता है अर्थात् महान योगी गोरक्षनाथ के अनुसार इन नियमों के आधार पर ही आहार ग्रहण करना चाहिए क्योंकि इस प्रकार भोजन करने के द्वारा ही शरीर शारीरिक स्वस्थता व सुदृढ़ता के साथ मानसिक शांति व आत्मिक बल को प्राप्त करता है।

**भोजन से पूर्व उच्चारणीय मंत्र-**

**ओम् अन्नपते अन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः।**

**प्रप्रदातारं तारिषऽऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे॥ (यजु० वे० ११/८३)**

यजुर्वेद में अन्न प्राप्ति के लिए प्रार्थना एवं आहार की महिमा का वर्णन करते हुए लिखा गया है कि हे प्रभो अन्न के स्वामी! आप हमें पुष्टिकारक एवं रोगनाशक अन्न प्रदान किजिए अर्थात् शुद्ध अन्न शरीर में पुष्टिवर्धन व रोगनाशक क्षमता बढ़ाने में सहायक है। अन्न का दान करने वालों को समृद्ध बनाइए। आप हमारे कुटुंबियों और पशुओं को अन्न प्रदान किजिए।

#### भोजन कि मात्रा-

शुद्धं सुमधुरं स्निग्धमुदरार्धविवर्जितम्।  
भुज्यते सुरसंप्रीत्या मिताहारमिमं विदुः॥ (धे० स० 5/21)  
अन्नेन पूरयेदर्धं तोयेन तु तृतीयकम्।  
उदरस्य तृतीयांशं संरक्षेद्वायुचारणे॥ (धे० स० 5/22)

धेरेण्ड संहिता के अनुसार योग साधक को स्वच्छ, सुमधुर, स्निग्ध एवं सुरस भोजन से संतोषपूर्वक आधा पेट भरना चाहिए एवं आधा खाली रखना चाहिए। महर्षि धेरेण्ड ने इसे मिताहार कहा है।

महर्षि धेरेण्ड ने भोजन का नियम बतलाते हुये कहा है कि आमाशय के 50% या आधे भाग को अन्न से भरना चाहिए एवं 25% या एक चौथाई भाग को जल से भरना चाहिए और 25% या चौथाई भाग को वायु संचालन के लिये खाली रखना चाहिए। इस प्रकार भोजन करने से स्वास्थ्य बना रहता है एवं पेट से संबंधित कोई समस्या नहीं रहती।

#### आहार के लिए उचित स्थान-

आहारं तु रहः कुर्यान्निहरिमपि सर्वदा।  
श्लेष्मक्षये प्रवृद्धोष्मा बलबाननलस्तदा॥ (यो० र० 1/113)

आयुर्वेदिक ग्रंथ योगरत्नाकरः के अनुसार भोजन करने योग्य स्थान का वर्णन करते हुए बताया गया है कि मनुष्य को आहार एवं निहार सदा एकांत में ही करना चाहिए क्योंकि ऐसा करने से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है और ऐसा न करने से दरिद्रता आती है।

भोजन के पश्चात् उच्चारणीय मंत्र-

ओ३म्। मोघम् अन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत् स तस्य।  
नार्यणं पुष्यति नो सखायं केवलाद्यो भवति केवलादि॥ (ऋ० वे० 10/117/6)

ऋग्वेद के अनुसार जो स्वार्थी व्यक्ति अन्न आदि भोग्य पदार्थों को केवल अपने लिये ही प्राप्त करता है, वह न तो ईश्वर कि उपासना जैसे यज्ञ, दान आदि करता है, न विद्वानों कि सेवा करता है; उसका अन्न आदि प्राप्त करना निष्फल है। यह बात बिल्कुल सत्य है। क्योंकि वह उसके नाश का कारण बनेगा। केवल स्वयं ही खाने वाला केवल पाप रूप होता है।

अर्थात् भोजन ग्रहण करते समय ईश्वर का धन्यवाद एवं उससे कुछ अंश किसी जानवर या किसी जरूरतमंद के लिए दान अवश्य करना चाहिए हैं इस प्रकार ग्रहण किया हुआ आहार सार्थक सिद्ध होता है।

#### आहार के प्रकार :

आहारं षड्विधं चोष्यं पेयं लेह्यं तथैव च।  
भोज्यं भक्ष्यं तथा चर्व्यं गुरु विद्वाधथोत्तरम्॥ (यो० र० 139)

योगरत्नाकरः में टीकाकार द्वारा भोजन के मुख्यतः छः भेद बताए गये हैं- चूष्य (चूसने योग्य, आम आदि), पेय (पीने योग्य, दूध व शर्बत आदि), लेह्य (चाटने योग्य, रसाला आदि), भोज्य (भोजन करने योग्य, चावल आदि), भक्ष्य (दांत से काट कर खाने योग्य, लड्डू आदि), चर्व्य (चबा कर खाने योग्य, चिउड़ा व भूजा आदि) और इनमें से प्रत्येक को एक दुसरे का गुरु अर्थात् श्रेष्ठ जानना चाहिये।

**योग ग्रंथों के अनुसार आहार का वर्गीकरण :** पथ्य आहार- पथ्य का अर्थ है सही मार्ग। पथ्य आहार वह आहार है जो शरीर के जठराग्नि को संतुलित करे, मन और शरीर दोनों के लिए कल्याणकारी व हितकारी और स्वास्थ्य की रक्षा करे।

**घृतं क्षीरञ्च मिष्टान्नं ताम्बूलं चूर्णवर्जितम्।  
कर्पूरं निस्तुषं मिष्टं सुमठं सूक्ष्मरन्ध्रकम्॥ (शि० स० 3/40)**

शिव संहिता में पथ्याहार का वर्णन करते हुए कहा गया है कि योगी को सदा घृत, दूध, मीठा अन्न, बिना चुने के पान, कर्पूर, छिल के रहित अन्न, चावल, दाल आदि और मिश्री आदि का आहार ग्रहण करना चाहिए व छोटे द्वार वाले घर में रहना चाहिए क्योंकि इस प्रकार का आहार ही शरीर के लिए अनुकूल व हितकारी है जो योगसिद्धि में सहायक है।

**गोधूमशालियवषष्टिकशोभनान्नं क्षीराज्यखण्ड नवनीतसितामधूनि।  
शुण्ठीपटोलकफलादिकपणञ्चशाकं मुद्गादिदिव्यमुदकं च यमीन्द्रपथ्यम्॥ (ह० प० 1/63)**

हठप्रदीपिकानुसार योगी के लिए उपयोगी आहार का वर्णन करते हुए कहा गया है कि गेहूं, चावल, जौ, साठी चावल जैसे सुपाच्य अन्न, दूध, घी, खांड, मक्खन, मिसरी, मधु, सुंठ, परवल जैसे फल आदि पांच प्रकार के शाक (जीवंती, बथुआ, चौलाई, मेघनाद तथा पुनर्नवा), मूंग, तथा वर्षा का जल आदि योग साधकों के लिये पथ्यकारक भोजन हैं।

अपथ्य आहार- अपथ्य का अर्थ है निषिद्ध मार्ग। अपथ्य आहार वह आहार है जो शरीर के अंदर विभिन्न रोगों को उत्पन्न कर योगसाधना में बाधा पैदा करता है।

**अम्लं रुक्षं तथा तीक्ष्णं लवणं सार्षपं कटुम्।  
बहुलं भ्रमणं प्रातःस्नानं तलविदाहकम्॥ (शि० स० 3/36)**

शिव संहिता में योगी के लिए त्याज्य/वर्जित भोजन का वर्णन करते हुए कहा गया है कि एक योगी को भोजन में खट्टा, रुखा, तीखा, नमक, सरसों का शाक और तेल आदि कड़वा आहार, बहुत घूमना, प्रातः स्नान, तेल लगाना व खाना आदि त्याग देना चाहिए।

**कट्वम्लतीक्ष्णोष्णहरीतशाकसौवीरतैलतिलसार्षपमत्स्यान्।**

**आजादिमांसदधितक्रकुलत्थकोलपिण्याक हिङ्गुलशुनाद्धमपथ्यमाहुः॥ (ह० प० 1/58)**

हठप्रदीपिकानुसार योगियों के लिए अपथ्य आहार का वर्णन इस प्रकार किया गया है कि कटु, अम्ल, खट्टा, तीखा, नमकीन, गरम, हरी शाक, खट्टी भाजी, तेल, तिल, सरसों, मद्य, मछली, बकरे आदि का मांस, दही, छाछ, कुलथी, कोल, खल्ली, हिंग व लहसुन आदि वस्तुएं योग साधकों के लिये अपथ्यकारक कहे गये हैं।

**अंगानां मर्दनं कृत्वा श्रमसञ्जातवारिणा।**

**कट्वम्ललवणत्यागी क्षीरभुजनमाचरेत्॥ (गो० प० 1/52)**

यौगिक ग्रंथ गोरक्षपद्धति में योगियों के लिए त्याज्य एवं ग्रहण करने योग्य आहार का वर्णन करते हुये कहा गया है कि हठयोगाभ्यास 'प्राणायाम' के दौरान उत्पन्न स्वेद को अंग में मल कर एवं खट्टा व नमकीन आहार त्याग करना चाहिए एवं केवल दुग्धाहार ग्रहण करना चाहिए।

**सात्त्विक आहार-**

**आयुः सत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः।**

**रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्धा आहाराः सात्त्विकप्रियाः॥ (भ० गी० 17/8)**

भगवद्गीता के अनुसार सात्त्विक आहार को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि जो भोजन रसयुक्त, चिकना, स्थिर व स्वभाव से प्रिय होता है वह आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख, व प्रीति को बढ़ाता है। ऐसा भोजन सात्त्विक भोजन कहलाता है एवं यह सात्त्विक प्रकृति के मनष्यों को प्रिय होता है।

**राजसिक आहार-****कद्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरुक्षविदाहिनः।****आहारा राजसस्येष्टता दुःखशोकामयप्रदाः॥ (भ० गी० १७/९)**

भगवद्गीता के अनुसार राजसिक आहार को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि जो भोजन कड़वा, खट्टा, लवणयुक्त, बहुत गर्म, तीखा, रुखा, दाहकारक, दुःख, चिंता व रोगों को उत्पन्न करने वाला भोजन राजसिक भोजन कहलाता है एवं यह राजसिक प्रकृति के मनुष्यों को प्रिय होता है।

**तामसिक आहार -****यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत्।****उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम्॥ (भ० गी० १७/१०)**

भगवद्गीता के अनुसार तामसिक आहार को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि जो भोजन अधपका, रसरहित, दुर्गन्धयुक्त, बासी, उच्छिष्ट, व अपवित्र भी है। ऐसा भोजन तामसिक भोजन कहलाता है एवं यह तामसिक प्रकृति के पुरुषों को प्रिय होता है।

**वर्जित आहार-****भोजनमहितं विद्यात् पुनरप्युष्णीकृतं रुक्षम्।****अतिलवणमम्लयुक्तं कदशनशाकोत्कटं वर्ज्यम्॥ (ह० प० १/६०)**

हठप्रदीपिका में योगीयों के लिए वर्जित आहार को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि फिर से दोबारा से गर्म किया गया, रुखा, अधिक नमक या खट्टाई वाला, अपथ्यकारक तथा उत्कट अर्थात् वर्जित शाकयुक्त भोजन अहितकर एवं हानिकारक होता है। अतः इस प्रकार का भोजन नहीं खाना चाहिए।

**योगाभ्यासी के लिये उपयुक्त भोजन :****पुष्टं सुमधुरं स्निग्धं गव्यं धातुप्रपोषणम्।****मनोभिकलषितं योग्यं योगी भोजनमाचरेत्॥ (ह० प० १/६३)**

हठप्रदीपिका में योगाभ्यासीयों के लिए उपयुक्त भोजन का वर्णन करते हुए कहा गया है कि पुष्टिकारक, सुमधुर, स्निग्ध, गाय के दूध से बने भोज्य पदार्थ, धातु को पुष्ट करने वाला, मनोनुकूल तथा विहित भोजन ही योगाभ्यासीयों को ग्रहण करना चाहिये। इस प्रकार का भोजन ही योग सिद्धि में सहायक है।

**अभ्यासकाले प्रथमे शस्तं क्षीराज्यभोजनम्।****ततोऽभ्यासे दृढीभूते न तादृङ्निग्रहः॥ (ह० प० २/१४)**

स्वामी स्वात्माराम कृत हठप्रदीपिका में बताया गया है कि योगाभ्यास के प्रारंभ में दूध-घी से युक्त भोजन उत्तम कहा गया है। योगाभ्यास में दृढ अर्थात् कुशल हो जाने के पश्चात् इन सभी नियमों में आग्रह रखना आवश्यक है।

**आरम्भे प्रथमे कुर्यात्क्षीराज्यं नित्यभोजनम्।****मध्याह्ने चैव सायाह्नेभ्योभोजनद्वयमाचरेत्॥ (धे० स० ५/३१)**

घेरण्ड संहिता में आहार के बारे में वर्णन करते हुए कहा गया है कि प्राणायाम आरंभ करने से पूर्व प्रतिदिन दूध व घृत का सेवन और मध्याह्न एवं सायं दोनों समय का भोजन करें।

**योग साधना में उचित आहार की महत्ता :** आहार की उपर्युक्त महत्ता को समझते हुए योग साधना में मानव शरीर के लिए उचित, शुद्ध व स्वच्छ आहार से संबंधित निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं-

**मधुराद्वर्ध रक्तमम्लान्मज्जाप्रवर्धनम्।****लवणाद्वर्धते त्वस्थि तिक्तान्मेदः प्रवर्धते॥ (यो० र० १/१३४)****कटुकाद्वर्धते मांसं कषायाद्वर्धते रसः।****अत्राञ्च वर्धते शुक्रं षड्रसा धातुवर्धनाः॥ (यो० र० १/१३५)**

योगरत्नाकरः के अनुसार भोजन के गुणों का वर्णन इस प्रकार किया गया है- मधुर अन्न के भोजन से रक्त, अम्ल (खट्टे) से मज्जा, नमकीन से अस्थि, तिक्त से मेद, कटु से मांस और कषाय अन्न के भोजन से रस व शुक्र बढ़ता है। इस प्रकार छः प्रकार के अन्न रस, रक्त, मांस, मेद मज्जा आदि धातुओं को बढ़ाते हैं।

**य उपस्तम्भा इति-आहारः, स्वप्नो, ब्रह्मचर्यमिति । एभिर्त्रिभिर्यु-क्तियुक्तैरुपस्तब्धमुपस्तम्भः शरीरं बलवर्णोपचयोपचितमनुवर्तते याव-दायुः-संस्कारात् संस्कारमहित मनुपसेव मानस्य, य इहैवोपदक्ष्यते ॥**

(च.स.9/34)

चरक संहितानुसार तीन उपस्तम्भ तत्त्व जो शरीर को धारण करते हैं, आहार, स्वप्न और ब्रह्मचर्य हैं। आहार निद्रा एवं ब्रह्मचर्य के समुचित सेवन से शरीर स्थैर्य को प्राप्त कर सार्थक व सुदृढ़ बनता है इसलिए इन्हें स्वास्थ्य के तीन उपस्तम्भ (आहार, निद्रा एवं ब्रह्मचर्य) कहा गया है। इन तीनों को युक्ति पूर्वक प्रयुक्त करने पर शरीर दृढ़, मजबूत, वर्ण, पुष्टि से युक्त होता है, जब तक शरीर में धर्मचर्म जीवन के बनाने में कारण रहते हैं। इन तीनों उपस्तम्भों का उचित मात्रा में सेवन करना ही लम्बी व बड़ी आयु के साथ सुखद जीवन का कारण है।

**आहारशयनब्रह्मचर्यैर्तयुक्त्या प्रयोजितैः।**

**शरीरं धार्यते नित्यमागारमिव धारणैः ॥ (अष्टांगहृ0 7/51)**

अष्टांगहृदयम् में बताया गया है कि आहार, निद्रा एवं ब्रह्मचर्य इन तीनों की युक्तिपूर्वक सुनियोजित ढंग से उपयोग करने से मनुष्य को स्वस्थ शरीर प्राप्त होता है जिस प्रकार खंभों से मकान स्थिर रहता है एवं अच्छे एवं शक्तिशाली खंभों से बना घर ज्यादा दिनों तक चलता है, ठीक वैसे ही स्वास्थ्य के तीन स्तंभों के उचित व सुनियोजित उपयोग से मनुष्य अपने जीवनकाल को बढ़ा सकता है अर्थात् मनुष्य लंबे समय तक जीता है।

**युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।**

**युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥ (भ0 गी0 6/17) (गो0 प0 2/91)**

भगवद्गीता एवं गोरक्षपद्धती में कहा गया है कि यथायोग्य आहार-विहार करने वालों, कर्मों में चेष्टा करने वालों एवं यथायोग्य सोने व जागने वाले मनुष्यों का दुःखनाशक योग सिद्ध हो जाता है अर्थात् कर्मों में चेष्टायुक्त होकर दिनचर्या व रात्रिचर्या को नियमित एवं संयमित करने से दुःखों का नाश करने वाला योग सिद्ध हो जाता है।

**यमेष्विव मिताहार अहिंसा नियमेष्विव।**

**मुख्यं सर्वासनेष्वेकं सिद्धाः सिद्धासनं विदुः ॥ (ह0 प0 1/38)**

हठप्रदीपिकानुसार अष्टांगयोग के अंगों में यम व नियमों कि महत्ता को स्पष्ट करते हुए कहा गया है, जिस प्रकार यमों में मिताहार एवं नियमों में अहिंसा श्रेष्ठ है उसी प्रकार यह सिद्धों का सिद्धासन भी सभी आसनों में श्रेष्ठ है।

**ब्रह्मचारी मिताहारी त्यागी योगपरायणः।**

**अब्दादूर्ध्वं भवेत्सिद्धो नात्र कार्या विचारणा ॥ (ह0 प0 1/57) (गो0 प0 1/53)**

हठप्रदीपिका एवं गोरक्षपद्धतिः में कहा गया है कि ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले (ब्रह्मचारी), मिताहारी (अल्पाहारी), त्यागी (संयमी), बनकर जब कोई भी योगी अपना जीवन व्यतीत करता है, तब निःसंदेह योग के प्रति समर्पित वह साधक एक वर्ष या उससे कुछ अधिक समय में योग में सिद्धि को प्राप्त करता है।

**मिताहारं विना यस्तु योगारम्भं तु कारयेत्।**

**नानारोगो भवेत्तस्य किञ्चिद्योगो न सिध्यति ॥ (घे0 स0 5/16)**

महर्षि घेरण्ड के अनुसार जो साधक योगारंभ काल में मिताहार नहीं करता उसके शरीर में अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं एवं ऐसे साधक को योग कि सिद्धि प्राप्त नहीं होती है। अतः सिद्धि प्राप्ति के लिए योग साधक को मिताहारी होना एवं संतुलित भोजन ग्रहण करना अत्यंत आवश्यक है।

**यो विश्वान्यभि व्रता सोमस्य मदे अन्धसः।**

**इन्द्रो देवेषु चेतति।। (ऋ0 वे0 8/32/28)**

ऋग्वेद में कहा गया है, कि जो भोज्य पदार्थों के सौम्यरस से इंद्रियों को सौम्य (सात्त्विक) बनाता है, उसका शरीर, मन एवं आत्मा उन्हीं गुणों से प्रभावित होते हैं अर्थात् सात्त्विक भोजन ग्रहण करने से शरीर, मन व आत्मा भी शुद्ध व सात्त्विक बनते हैं। उपनिषदों में स्पष्ट रूप से वर्णित है कि शुद्ध आहार के मोक्ष की प्राप्ति की जा सकती है उदाहरणस्वरूप-

**आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।**

**स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः॥ (छांदोग्य उप० ७/२६/२)**

छांदोग्य उपनिषद के अनुसार आहार शुद्धि से सत्त्व की शुद्धि होती है, सत्त्वशुद्धि से बुद्धि की शुद्धि, बुद्धि की शुद्धि से स्मृति, स्मृति की शुद्धि से ग्रंथियों कि शुद्धि एवं ग्रंथि शुद्धि से ही मोक्ष प्राप्ति में सहायता मिलती है अर्थात् मोक्ष प्राप्ति में पहला अंग शुद्ध आहार ही है।

**षांये भी मरिये अणषांये भी मरिये । गोरष कहै पूता संजंमि हीं तरिये।**

**मधि निरंतर कीजै बास । निहचल मनुआ थिर होइ सास॥ (गो० बा० १/१४७)**

हिंदी साहित्य कि पुस्तक गोरख-बानी में भी आहार कि संयमितता की उपयोगिता को वर्णित करते हुये कहा गया है कि ज्यादा खाना खाने से जीवन मौत की तरफ अग्रसर होता है साथ ही बिल्कुल न खाना भी मौत के समान है अर्थात् ज्यादा खाने या बिल्कुल न खाने से शरीर में विभिन्न रोग उत्पन्न हो जाते हैं एवं प्राण प्रवाह धीरे-धीरे कम हो कर रुक जाता है जिससे मनुष्य की असमय मृत्यु हो जाती है। ऋषि गोरख जी कहते हैं कि हे पुत्र! इन दोनों (अत्यधिक खाने या बिल्कुल न खाने) में संयम करने से ही मुक्ति हो सकती है, इसलिए मध्यम स्थिति में ही रहना चाहिए जिससे सांस स्थिर, प्राण प्रवाह निरंतरता के साथ मन निश्चल व शांत हो जाता है।

**अन्न व ब्रह्म का अविच्छिन्न सम्बंध-**

**अन्नाद्वै प्रजाः प्रजायन्ते। याः काश्च पृथिवीःश्रिताः। अथो अन्नेनैव जीवन्ति। अथैनदधि यन्त्यन्ततः। अन्नःहि भूतानां ज्येष्ठम्। तस्मात्सर्वोषधमुच्यते। सर्वं वै तेऽन्नमाप्नुवन्ति येऽन्नं ब्रह्मोपासते। अन्नःहि भूतानां ज्येष्ठम्। तस्मात्सर्वोषधमुच्यते। अन्नाद्भूतानि जायन्ते। जातान्यन्नेन वर्धन्ते। अद्यतेऽसि च भूतानि। तस्मादन्नं तदुच्यत इति। (तै. उ. २.२.१)**

तैत्तिरीय उपनिषद के इस मंत्र-समूह में अन्न कि महिमा का वर्णन करते हुए बताया गया है की सभी प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं, अन्न से ही जीवित रहते हैं और अंत में अन्न में ही विलीन हो जाते हैं। अन्न को केवल पोषण-साधन नहीं, बल्कि समस्त सृष्टि का अस्तित्वमूल घोषित किया गया है। उत्पत्ति, स्थिति और लय इन तीनों का कारण अन्न को बताकर उसे 'भूतानां ज्येष्ठम्' कहा गया है। अन्न को 'सर्वोषधम्' कहकर उसके चिकित्सकीय तथा संतुलनकारी स्वरूप को रेखांकित किया गया है। साथ ही, 'अन्नं ब्रह्मोपासते' के माध्यम से यह स्थापित किया गया है कि अन्न ब्रह्म का स्थूल प्रतीक है। अतः यहाँ प्राप्त होता है कि प्राणों का भौतिक आधार अन्न ही है उपनिषद् परम्परा में अन्न को केवल भौतिक पोषण न मानकर प्राण का स्थूल रूप स्वीकार किया गया है। अन्न के माध्यम से ही शरीर का पोषण, प्राण की उत्पत्ति और प्रवाह संभव होता है। इस प्रकार अन्न, प्राण, जीवन और ब्रह्म- चारों के बीच एक अविच्छिन्न आध्यात्मिक एवं तात्त्विक सम्बन्ध प्रतिपादित किया गया है।

**सीमाएं :** उपर्युक्त शोध में आहार की महत्ता एवं वर्गीकरण को केवल संस्कृत, हिन्दी एवं अंग्रेजी भाषाओं के आधार पर समीक्षा की गई है। इस शोध की और अधिक विश्वसनीयता व वैधयता को सिद्ध करने के लिए अन्य भाषाओं में भी समीक्षा की जा सकती है।

**उपसंहार :** यौगिक ग्रंथों के अनुसार आहार केवल शरीर को पोषण देने वाला साधन नहीं है, बल्कि यह मानसिक शांति व स्थिरता के साथ आध्यात्मिक उन्नति का भी एक महत्वपूर्ण अंग भी है। योग साधना में आहार कि महत्ता का वर्णन करते हुए योगियों के लिए सात्त्विक आहार को सर्वश्रेष्ठ बताया गया है क्योंकि यह शरीर, मन और आत्मा को शुद्ध करता है। राजसिक आहार उत्साह और क्रियाशीलता बढ़ाता है, किंतु अधिक मात्रा में लेने से यह

मानसिक अस्थिरता उत्पन्न कर सकता है। तामसिक आहार से मनुष्य का चित्त अशुद्ध होता है एवं इस आधार पर योग साधना में बाधा उत्पन्न होती है। अतः योग साधकों को सात्त्विक आहार को अपनाना चाहिए ताकि वे शारीरिक एवं मानसिक शुद्धता के साथ आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त कर सकें। अतः उपर्युक्त लेख के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि भारतीय ज्ञान प्रणाली में वर्णित आहार का योग सिद्धि प्राप्त करने में विशेष योगदान है।

### संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. अग्रवाल एम० एम०, भावप्रकाशनम्, चौखम्भा सुरभाती प्रकाशन, वाराणसी, भारत। आइ० एस० बी० अन० – 978-93-81484-02-9.
2. आचार्य ब०, वैदिक उपासना विधि, द्विशताब्दीय संस्करण, (वि० स० 2081), वैदिक प्रकाशन, राजस्थान। आइ० एस० बी० अन० – 978-81-955263-1-4.
3. आयुर्वेदाचार्य वी०एस०, योगरत्नाकरः, (2017), चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी, भारत। आइ० एस० बी० अन० – 978-93-86735-07-2.
4. गुप्त के० स० ए०, चरक संहिता, द्वितीय संस्करण, भार्गव पुस्तकालय, गाय घाट, बनारस, भारत। अल० बी० एस० एन० ए० ए०- 125794.
5. गोयंदका ह०, श्रीमद्भगवद्गीता (शांकरभाष्य), गीता प्रेस गोरखपुर वाराणसी, भारत।
6. तिवारी एस० के०, गोरक्षपद्धतिः एवं गोरक्षयोगशास्त्रम्, चौखम्भा सुरभाती प्रकाशन, वाराणसी, भारत। आइ० एस० बी० अन० – 978-93-86554-83-3.
7. त्रिपाठी प०ह०, शिव संहिता, प्रथम संस्करण, चौखम्भा कृष्णदास अकादमी वाराणसी, चौखम्भा प्रेस वाराणसी, भारत। आइ० एस० बी० अन० 81-218-0211-3.
8. त्रिपाठी ब०, अष्टाङ्गहृदयम्, (2014), चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, भारत। आइ० एस० बी० अन० – 978-81-7084-559-0.
9. पोद्दार एस० एच० प०, गोस्वामी च०(2000), उपनिषद अंग 17वां प्रकाशन, गीता प्रेस गोरखपुर, वाराणसी, भारत।
10. बडथवाल पी०, गोरखबानी (सबदी), छठा संस्करण (2004), सम्मेलन मुद्रणालय प्रकाशन, इलाहाबाद, भारत।
11. शर्मा ग० स० (2015), ऋग्वेद (मण्ड० 1, सूक्त 18, मं० 7), संस्कृत साहित्य प्रकाशक, नई दिल्ली, भारत। आइ० एस० बी० अन०- 978-93-5065-223-7.
12. शर्मा ग० स० (2015), यजुर्वेद (मण्ड० 11, मं० 83), संस्कृत साहित्य प्रकाशक, नई दिल्ली, भारत। आइ० एस० बी० अन०- 978-818-948-5122.
13. श्रीमद्भगवद्गीता, 240वां प्रकाशन, गीता प्रेस गोरखपुर वाराणसी, भारत।
14. सरस्वती एस० एन०, घेरण्ड संहिता, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर बिहार, भारत। आइ० एस० बी० अन० 978-81-86-86336-35-9.
15. स्वात्माराम य० (2002), हठप्रदीपिका, कैवल्यधाम लोनावाला। आइ० एस० बी० अन०- 978-818-948-5122.
16. शर्मा भ., शर्मा रा. (2022), 108 उपनिषद (ज्ञान काण्ड), युगनिर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट गायत्री तपोभूमि, मथुरा।
17. रामदेव (2018), श्रीमद्भगवद्गीता (गीतामृत), चतुर्थ संस्करण, दिव्य प्रकाशन, हरिद्वार, उतराखंड। आइ० एस० बी० अन०- 978-81-89235-68-0.